कान्हड़देप्रबन्ध-सांस्कृतिक दृष्टि से[1]

मूल गुजराती लेखक : श्रीभोगीलाल ज० सांडेसरा

अनुवादक : जयशंकर देवशंकरजी शर्मा (श्रीमाली) बीकानेर

गुजरात विश्वविद्यालयकी विद्याविस्तार भाषणमालामें इस भाषणको देने हेतु निमंत्रण देनेके लिये सेठ लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्यामंदिरके नियामक श्री दलसुखभाई मालवणियाका मैं अन्तःकरणपूर्वक आभार मानता हूँ। आजके भाषणके लिये कान्हड़देप्रबन्धका विषय उन्हींकी अनुमतिसे निश्चित हुआ है। श्री डाह्याभाई देरासरी द्वारा सम्पादित इस ग्रन्थकी प्रथमावृत्ति प्रायः मुझे देखने का अवसर सन् १९३०में मिला और उस समय मैंने इसे समझे-बिना समझे ही पढ़ लिया। यह मेरा प्राचीन गुजराती अवलोकनका प्रथमावसर था। तत्पश्चात् इस रचनाको मैंने अपने कालेज अध्ययनके अवसरपर भी पढ़ा है और इसके अध्यापनका भी अवसर आया है। साहित्य, भाषा और संस्कृति-इतिहास इस प्रकारसे विविध दृष्टिसे विचार करते समय इसका आकर्षण बढ़ता ही रहा है तथा इसका महत्त्व समझमें आता गया है। इस भाषण के निमित्त 'कान्हड़देप्रबन्ध' से सम्बन्धित अपने विचारोंको लेखबद्ध करनेका मेरा मन हुआ।

'कान्हड़देप्रबन्ध' सं० १५१२ (ई० स० १४५६) में पश्चिमी राजस्थानमें······· भूतपूर्व जोधपुर राज्यके, गुजरातसे सटे हुए दक्षिण विस्तारमें·······आया हुआ जालौर नामक स्थानमें निर्मित काव्य है। (यह भारतीय संस्कृति विद्यामंदिरकी स्थापना जिसके नामसे हुई है उन सेठ लालभाई दलपतभाईके पूर्वज लगभग सांच सौ वर्ष पूर्व अपने मूल पितृ स्थल ओसियासे निकलकर जालौरके आसपासके पुरोहित ब्राह्मणोंमें ठोस प्रचलित अनुश्रुतिके अनुसार जालौरसे केवल छह माइलकी दूरीपर स्थित सांकरणा नामक गाँवमें कुछ पीढ़ियों तक निवास करनेके बाद गुजरातमें आये थे। यह योगानुयोग, मुझे यहाँ स्मरण हो जाता है। जालौर नगरके ध्वंस हो जानेपर वहाँके जालौरा (झालौरा-झारौला) ब्राह्मण एवं वणिक् दक्षिणकी ओर आकर राधनपुरके पास जालौर-जाल्यौधो (वर्तमानका देवगाम)में कुछ समय तक रहकर गुजरातमें अन्यत्र फैल गये। इनकी कुलदेवी हिमजामाता और ज्ञातिपुराण 'वालखिल्यपुराण' है।

'कान्हड़देप्रबन्ध'की भाषा प्राचीन गुजराती किंवा प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी या मारू-गुर्जर है। इसके रचयिता वीसलनगरका नागर कवि पद्मनाभ है। प्राचीन गुजराती साहित्यकी सबसे विशिष्ट एवं विख्यात रचनाओंमेंसे यह एक कान्हड़देप्रबन्ध है। यह एक वीर एवं करुणरससे परिपूर्ण सुदीर्घ कथा-काव्य है। दिल्लीके सुलतान अलाउद्दीन खिलजी द्वारा गुजरातके अन्तिम हिन्दू शासक कर्णदेव वाघेलाके शासन-कालमें किया गया गुजरातपर आक्रमण और सोमनाथ भंगके अवसरपर दिल्लीसे गुजरातके मार्गपर स्थित जालौर राज्यमेंसे निकलने (जाने देने)के लिये वहाँके राजा सोनगिरा चौहान कान्हड़देवके पाससे माँगी गई अनुज्ञा, किन्तु इस माँगका कान्हड़देव द्वारा अस्वीकार और सुल्तानके योद्धाओंका

---

१. गुजरात विश्वविद्यालयकी विद्याविस्तार भाषणमालामें सेठ लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्यामंदिर, अहमदाबाद में ता० २९ जनवरी, १९७० को दिया गया भाषण।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सोमनाथ शिवलिंगके टुकड़े लेकर गुजरातमेंसे जब वापस लौट रहा था उस समय इसपर आक्रमण कर कान्हड़देव द्वारा उसका पराजय, अन्तमें प्रचण्ड सेनाको लेकर अलाउद्दीन द्वारा जालौरके चारों ओर घेरा डालना, इस घेरेके अनेक वर्षों तक रहनेके बाद एक विश्वासघाती राजपूतकी हीनताके कारण गढ़ (किले)का पतन और राजपूतानियों द्वारा जौहर—अन्य कुछेक उपकथाओंको छोड़ देनेपर कान्हड़देप्रबन्धका मुख्य कथानक कहानी ही है।

इस काव्यका सृजन मुख्य रूपसे दोहे-चौपाइयोंमें किया गया है। यद्यपि बीच-बीचमें योग्य स्थानपर करुणरस-परिप्लावित पद—ऊर्मिगीत भी आये हैं। पद्मनाभ कविकी वाणी ओजस्वी, प्रवाहबद्ध, प्रासादिक एवं देशभक्तिकी सचोट ध्वनिवाली है। कविका भाषा प्रभुत्व एवं शब्द-निधि असाधारण है। यह कथा काव्य युद्ध-विजयी होनेपर भी मुस्लिम सत्ताके साथ संघर्षका निरूपण होते हुए, युद्धकी परिभाषाके और फारसी-अरबीके मूल शब्द[1] भी इसमें प्रचुर मात्रामें आये हैं। पद्मनाभ, कान्हड़देवके वंशज जालौरके शासक अखेराजके राजकवि होनेके कारण इन्हें ऐतिहासिक तथ्य एवं पार्श्वभूमिकाका पूर्ण ज्ञान है। हिन्दू और मुस्लिम राजनीतिका इन्हें प्रत्यक्ष अनुभव है और इसी कारण ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक-दृष्टिसे भी 'कान्हड़देप्रबन्ध' एक महत्त्वपूर्ण रचनाके रूपमें सर्व स्वीकृत है। इसमें तात्कालिक सामाजिक परिस्थितिका पूर्ण आभास मिलता है। इस प्रकारसे भाषा साहित्य एवं ऐतिहासिक-ज्ञानपिपासुओंके लिए यह 'कान्हड़देप्रबन्ध' अनेक रूपसे विशेष महत्त्वकी रचना है। गुजरात निवासी कविने राजस्थानके एक प्रमुख शहर जालौरमें इसकी रचना की हो। वास्तवमें १६वीं शताब्दि तक गुजरात और राजस्थानकी जो भाषा विषयक एकता थी यह, इस बातका परिचायक बन जाता है। बादके समयमें विकसित हुई अर्वाचीन गुजराती और राजस्थानी इन जुड़वां-भाषाओंका एक एवं असंदिग्ध पूर्व रूप, अन्यब हुसंख्यक रचनाओंके समान 'कान्हड़देप्रबन्ध' में भी उपलब्ध है।

किन्तु, हमारे प्राचीन साहित्यका अध्यापन करने वालोंको और प्राचीन समयके कवियोंकी रचनाओंको मुख परम्परा द्वारा किंवा अन्य रीतिसे सुरक्षित रखनेवाले जन-समुदायको भी 'कान्हड़देप्रबन्ध' और इस ग्रन्थके रचयिताका विस्मरण हो गया था। अर्वाचीन कालमें इसकी खोजका श्रेय संस्कृत प्राकृतादि सहित भारतीय विद्याके प्रकाण्ड विद्वान् डॉ० ज्योर्ज ब्यूलरको है। अनुमानतया सौ वर्ष पूर्व बम्बई सरकारकी योजनाके अनुसार संस्कृत हस्तलिखित प्रतियोंकी खोज करते समय थरादके जैन ग्रन्थ भण्डारमें प्रथम बार इस 'कान्हड़देप्रबन्ध' की प्रति देखनेमें आई। डॉ० ब्यूलर बम्बई क्षेत्रके शिक्षाविभागीय एक उच्च अधिकारी थे। इन्होंने अपने ही विभागके श्री नवलराम लक्ष्मीराम पण्ड्या जो गुजराती साहित्यके अग्रगण्य अपितु विशिष्ट विवेचक थे। गुजराती भाषाके अधिकारिक-विद्वान्के रूपमें आपको इनके प्रति बहुत आदर था। 'कान्हड़दे-प्रबंध' की नकल करा कर उसे ब्यूलरने नवलरामके पास भेजी। इन दोनोंमें नवलराम 'गुजरात शालापत्र'

---

१. प्रमाण-दृष्टिसे देखें तो प्राचीन गुजराती साहित्यकी किसी अन्य रचनामें फारसी-अरबीके इतने शब्द नहीं हैं। सन् १९५३-'५४में जब मैं बी० ए०के छात्रोंको 'कान्हड़दे प्रबंध' का अध्यापन करा रहा था उस समय इसमेंके इस प्रकारके शब्दोंकी सार्थ सूची मेरे एक छात्र श्री नलिनकान्त पंड्याकी सहायतासे एवं बड़ौदा विश्वविद्यालयके फारसी विभागके तत्कालीन अध्यक्ष श्री एम० एफ० लोखण्डवालाके सहयोगसे तैयार की थी। (बुद्धिप्रकाश, जून १९५४) कान्हड़देप्रबंधमें फारसी-अरबीके १११ शब्द हैं। एक ही शब्दकी पुनरावृत्ति की तथा फारसी-अरबीके विशेष नामोंका इस संख्यामें समावेश नहीं है। तथापि इस प्रकारके समस्त प्रयोगोंकी भी जानकारी प्रस्तुत सूचीमें अंकित कर दी गई है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के सम्पादक थे। प्राप्त हुई नकल बहुत ही अशुद्ध थी फिर भी यह व्यर्थ ही नष्ट न हो जाय अतः इन्होंने गुजरात शालापत्रके सन् १८७७-७८ के अंकों में इसे क्रमशः प्रकाशित कर दिया। तत्पश्चात् गुजरात और राजस्थानमें विभिन्न स्थानोंसे इसकी अन्य हस्तलिखित प्रतियाँ उपलब्ध होती गई हैं। 'कान्हड़देप्रबन्ध' का प्रथम बार व्यवस्थित सम्पादन श्री डाह्याभाई देरासरी ने किया (प्रथमावृत्ति १९१३ द्वितीयावृत्ति १९२६) उस समय इन्होंने पाँच प्रतियोंका आधार लिया था। राजस्थान पुरातन ग्रन्थमालामें श्री कान्तिलाल व्यासने कान्हड़देप्रबन्धका पुनः सम्पादन किया (सन् १९५३) इसमें समस्त ११ हस्तलिखित प्रतियोंका उपयोग किया गया है। इसके बाद में भी कान्हड़देप्रबन्ध की कतिपय हस्तलिखित प्रतियाँ प्राप्त हुई हैं जिनमें बड़ौदा प्राच्यविद्यामंदिरको भेंट मिले हुए यति श्री हेमचन्द्रजीके भण्डार की सं० १६१० में लिखी हुई प्रति ध्यान में देने योग्य है। कतिपय अन्य प्राचीन शिष्ट कवियोंकी रचना जैसी समादृत की गई थी वैसी ही लोकप्रियता 'कान्हड़देप्रबन्ध' को प्राप्त न हुई हो यह इसकी वस्तु स्थिति देखे जाने पर स्वाभाविक है फिर भी गुजरात और राजस्थानके इस काव्यका एक समय विस्तृतरूपसे प्रचार हुआ था इस प्रकारसे जो दूर दूरके स्थानोंमें इसकी हस्तलिखित प्रतियाँ लिखी गई हैं एवं विभिन्न स्थानोंके ग्रन्थभण्डारोंमें वे सुरक्षित रखी गई हैं, यह उपरोक्त वर्णन से सिद्ध हो जाता है।

इस रचनाको 'प्रबन्ध' कहा गया है तो यह 'प्रबन्ध' क्या है? वैसे तो 'प्रबन्धका शब्दार्थ मात्र 'रचना' ही है। संस्कृत साहित्यकी बात करें तो प्रबन्ध यह गुजरात और मालवाका एक विशिष्ट साहित्यिक रूप है और मध्यकालमें विशेषकर जैन लेखकोंका यह प्रयास है। सामान्यतया सादे संस्कृत गद्यमें और यदा-कदा पद्यमें रचे हुए ऐतिहासिक किंवा अर्द्ध-ऐतिहासिक कथानकोंको 'प्रबन्ध'के नामसे पहचाना जाता है। मेरुतुंगाचार्यकृत 'प्रबन्धचिन्तामणि', राजशेखरसूरिकृत 'प्रबन्धकोष' 'जिनप्रभसूरिकृत' विविधतीर्थकल्प', बल्लालकृत 'भोजप्रबन्ध' आदि गद्यमें लिखे हुए प्रबन्धोंका नमूना है। जब कि प्रभाचंद्रसूरिकृत 'प्रभावक-चरित' पद्यमें रचा हुआ प्रबन्ध संग्रह है। यह तो हुई मध्यकालीन संस्कृत साहित्यकी बात। इसके कुछ प्रभावके कारण गुजराती साहित्यमें ऐतिहासिक कथावस्तुवाली रचनाको पहचाननेके लिए, 'प्रबन्ध', शब्दका व्यवहार किया गया हो, ऐसा हो सकता है। जैसे कि 'कान्हड़देप्रबन्ध', लावण्यसमय कृत 'विमल प्रबन्ध', सारंग कृत 'भोजप्रबन्ध', आदि। किन्तु यह परिभाषा पूर्ण रूपसे निश्चित नहीं है। क्योंकि 'कान्हड़देप्रबंध' की हस्तलिखित प्रतियाँ जिनका श्री कान्तिलाल व्यासने उपयोग किया है में की कुछकी पुष्पिकामें उसे 'रास', 'चरित', 'पवाड़ा', तथा चौपाई कहा गया है। 'विमलप्रबन्ध' के संपादनमें श्री धीरजलाल धनजी भाई शाह द्वारा व्यवहृत (श्री मणिलाल बकोरभाई व्यासके मुद्रित पाठ सिवायकी) दो हस्तलिखित प्रतियोंमेंसे एककी पुष्पिकामें इस रचनाको, 'रास' बताया गया है और दूसरीकी पुष्पिकामें उसे, 'प्रबन्ध' इसी प्रकारसे 'रास' इन दोनों नामोंका निर्देश किया गया है। 'विमलप्रबन्ध' की अन्य अनेक हस्तलिखित प्रतियोंकी पुष्पिकाओंमें इसे, 'रास' के रूपमें निर्देश देखनेका मुझे स्मरण है तिसपर भी 'रेवंतगिरी रास', 'समरा रास', 'पेथड रास', 'कुमारपाल रास', 'वस्तुपाल-तेजपाल रास' आदि ऐतिहासिक व्यक्ति किंवा इहवृत्तके आधारपर निर्मित अनेक रचनाओं को कहीं भी 'प्रबन्ध' नहीं कहा गया है। जयशेखरसूरि कृति त्रिभुवनदीपक प्रबन्ध 'केवल उपदेशप्रधान रूपक ग्रन्थ है इसमें पौराणिक या ऐतिहासिक कोई इतिवृत्त नहीं है। मात्रामेल छंदोंमें रची हुई ऐतिहासिक रचनायें 'प्रबन्ध' कहीं जाँय और देशियोंमें रची गई अन्य रचनायें 'रास' कहीं जाय, ऐसी एक मान्यता है, किन्तु ये भी साधार नहीं हैं। क्योंकि, देशी बद्ध रासकी जैसे मात्रामय छन्दोंमें रचे गये रास भी बड़ी संख्यामें प्राप्त होते हैं। नाकर और विष्णुदास जैसे आख्यानकारोंने तो अपने कतिपय आख्यानोंको

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'रास' कहा है। इसपरसे देखा जा सकता है कि प्राचीन गुजरातीमें रास और प्रबन्धके मध्य भेद रेखा पूर्णरूपसे स्पष्ट नहीं है अपितु, इन दोनोंको एक पृथक् साहित्यिक रूपमें मानना यह भी बहुत उचित नहीं है।

श्री डाह्याभाई देरासरी संपादित 'कान्हड़देप्रबन्ध' की द्वितीयावृत्तिके पुरोवचन (पृ० ७-१७)में श्री नरसिंहराव दिवेटियाने इस रचनामें व्यक्त की गई धार्मिक सामाजिक स्थितिके सम्बन्धमें, जन मण्डलकी स्थिति और योद्धाओं आदिकी स्थितिके सम्बन्धमें, नगर रचना, गृह रचना, शास्त्रोंके सम्बन्धमें एवं राजपूतोंके शौर्यपरायण संप्रदायके सम्बन्धमें संक्षिप्त किन्तु साधार विवेचन किया है। इसकी पुनरावृत्ति किये बिना इस ग्रन्थमें से उपस्थित होते हुए कुछ महत्त्वके और व्यापक प्रसंगोंकी चर्चा मैं इस भाषणमें करूँगा।

साहित्य और भाषाकी दृष्टिसे इस प्रशिष्ट काव्यका अध्ययन करते-करते मेरा राज्य-प्रबन्धकी बारीकी-में कैसे उतरना हुआ, इस सम्बन्धमें कुछ कहूँ। सन् १९४०-४१ में बी० ए० की परीक्षाके लिए 'कान्हड़दे प्रबन्ध' मैं पढ़ रहा था। श्री डाह्याभाई देरासरी द्वारा सम्पादित दो प्रतियाँ और सन् १९२४में इनके द्वारा प्रकाशित गुजराती पद्यानुवाद—यह सामग्री हमारे अवलोकनके लिए उपलब्ध थी। मूल प्रतिके सम्पादनमें खण्ड १ कड़ी १३ का पूर्वार्द्ध इस प्रकारसे था—

तिणि अवसरि गूजरधरराई, सारंगदे नाभि बोलाई।

इसके उत्तरार्द्धके रूपमें श्री देरासरीने निम्न कल्पित पाठ रखा है—

भत्रीजउ तेहनउ बलवन्त, करणदेव युवराज भणंत।

यह कल्पित पाठ दूसरी आवृत्तिमें ही जोड़ा गया है। प्रथवावृत्तिमें यह नहीं है। किसी अन्य हस्तलिखित प्रतिमें भी इससे मिलता-जुलता कुछ नहीं है। श्री देरासरीके सम्पादनके पश्चात् कई वर्षोंके बाद प्रकाशित हुए श्री कान्तिलाल व्यासका वाचन भी यही बताता है। हस्तलिखित प्रतियोंमें तो १३वीं कड़ीका उत्तरार्द्ध इस प्रकारसे है—

तिणि अवगुणिउ माधव बंभ, तही लगइ विग्रह आरम्भ।

अर्थात् उसने (तात्पर्य यह है कि सारंगदेव वाघेलाने) मन्त्री माधव ब्राह्मणकी अवगणना की। इस कारणसे विग्रहका प्रारम्भ हुआ।

तब प्रश्न यह प्रस्तुत होगा कि श्री देरासरीने उपर्युक्त कल्पित पंक्ति क्यों जोड़ी? कर्णदेव वाघेलाके दुराचारसे दुःखी माधव महतो २३वीं कड़ीमें सुल्तान अलाउद्दीनके सम्मुख कर्णके सम्बन्धमें फरियाद करते हुए कहता है कि—

खित्री तणउ धर्म लोपिउ, राउ कर्णदे गहिउल थयउ।

अर्थात् क्षत्रिय-धर्मका लोप कर दिया है और राजा कर्णदेव पागल हो गया है।

इस प्रकारसे केवल दस ही कड़ीके अन्तरपर दो विभिन्न व्यक्तियोंका—सारंगदेव ओर कर्णदेव—गुजरातके राजाके रूपमें कान्हड़देप्रबन्धमें निर्देश है। इससे राजा और युवराज दोनों ही साथ-साथ राज्य व्यवस्थाका संचालन करते हों इस प्रकारके दो अमली राज्यकी श्री देरासरी द्वारा अपने सम्पादनकी टिप्पणी (द्वितीयावृत्ति पृ० १२१)में कल्पना कर तथा सारंगदेव और कर्णदेवका राज्यकर्ताके रूपमें एक साथ उल्लेख मूल काव्यमें हुआ है। इसमेंका विद्यमान विरोधाभास दूर करनेके लिये उपरोक्त प्रथम कल्पित पाठ जोड़ा गया है। कल्पित पाठको जोड़नेकी पद्धति शास्त्रीय सम्पादनमें उचित नहीं है। किन्तु दो अमली राज्यके सम्बन्धमें श्री देरासरीने जो अनुमान किया है वह वास्तविक है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दो शासकोंके हाथमें राज्य-सत्ता हो इस प्रकारकी परम्परा प्राचीन भारतमें कतिपय स्थानोंपर थीं। जिस समय सिकन्दरने भारतपर आक्रमण किया था उस समय वर्तमान दक्षिण सिन्धमें स्थित पाताल राज्यमें विभिम्न कुलके दो राजाओंके हाथमें राज्य-सत्ता थी। (मैकक्रिण्डल, अलेक्जांडर्स इनवेजन, पृ० २९६) इस प्रकारके दो अमली राज्यके लिये कौटिल्यके अर्थशास्त्रमें द्वैराज्य (इसे डायर्की-द्विमुखी राज्य व्यवस्था कहा जायगा ?) शब्दका प्रयोग हुआ है। कौटिल्य, पूर्वाचार्योंके मतको अंकित करके कहता है कि 'दो पक्षोंमें द्वेष, वेमनस्य एवं संघर्षके कारण' द्वैराज्य नष्ट हो जाता है। (अर्थशास्त्र ८-२) भाइयों और पितृव्योंके मध्य भूमि बाँटनेकी अपेक्षा वे संयुक्त प्रबन्ध करें इस हेतु भी ऐसो व्यवस्था करनी पड़ी होगी। यद्यपि, ऐसे राज्यमें आन्तरिक विद्वेष—कलहका प्रमाण अधिक होजाना स्वाभाविक है। जैन आगमोंमेंके आचारांग सूत्रमें ऐसे राज्यका (प्रा० दोरज्जाणि, सं० द्विराज्यानि)का उल्लेख है और साधु ऐसे राज्यमें विचरण नहीं करे, इस प्रकारका विधान है। कान्हड़देप्रबन्धमें जिस पद्धतिका उल्लेख है वह वस्तुतः द्वैराज्य पद्धति है। गुजरातके वाघेला शासकोंमें यह पद्धति विशेषतः प्रचलित हो, ऐसा प्रतीत होता है। धोलकाके वाघेला राणा लवणप्रसाद और उसके पुत्र वीरधवलके सम्बन्धमें प्रबन्धात्मक वृत्तान्त इस प्रकार का है कि, वास्तवमें मुख्य शासक कौन है यह स्पष्ट रूपसे जान लेना कठिन है। लवणप्रसादके देहान्तका वर्ष निश्चित हो तत्पश्चात् ही अमुक घटना घटित हुई उस समय मुख्य शासक—युवराज नहीं—कौन था इसका पता लग सकता है। लवणप्रसादका देहान्त सं० १२८०-८२ और १२८७के मध्य कभी हुआ होगा ऐसा प्राप्त प्रमाणोंपरसे प्रतीत होता है (श्री दुर्गाशंकर शास्त्री गुजरात नो मध्यकालीन राजपूत इतिहास, द्वितीयावृत्ति पृ०सं० ४५०) किन्तु इसकी विशेष चर्चा यहाँ करना उपयुक्त नहीं है।

परन्तु द्वैराज्य-पद्धतिका वाघेलाओंमें अच्छा प्रचार था इस हेतु विशेष आधार चाहिये। अर्जुनदेव वाघेलाके ज्येष्ठ पुत्र रामदेवने अपने पिताके जीवन कालके मध्य ही राज्यभार वहन कर लिया था। समकालीन शिलालेखों द्वारा यह भली भाँति स्पष्ट ज्ञात हो जाता है। खंभातमेंके चिन्तामणि पार्श्वनाथके मंदिरके सं० १३५२ (ई० स० १२९६) के शिलालेखमें वर्णन है—

रिपुमल्लप्रमर्द्दी यः प्रतापमल्ल ईडितः। तत्सूनुरर्ज्जुनो राजा राज्येऽजन्यर्ज्जुनोऽपरः ॥८॥
ऊ·······क्ति विजयीपरेषाम्। तन्नन्दनोऽनिन्दितकीर्तिरस्ति ज्यष्ठोऽपि रामः किमु कामदेवः ॥९॥
उभौ धुरौ धारयतः प्रजानां पितुः पदस्यास्य च धुर्यकल्पौ। कल्पुद्रु मौ····णौ भुवि रामकृष्णौ ॥१०॥
(आचार्य जिनविजयजी, 'प्राचीन जैन लेख संग्रह,' भाग २, लेखांक ४४९)

वीरधवल बाघेलाके दो पुत्र थे—प्रतापमल्ल और वीसलदेव। प्रतापमल्लका तो वीरधवलके जीवन-कालमें ही अर्जुनदेव नामक पुत्रको छोड़कर स्वर्गवास हो गया था। वीरधवलके बाद, वीसलदेव धोलका राणा बना और तत्पश्चात् कुछ समयोपरान्त वह पाटणका महाराजाधिराज बना। वीसलदेव अपुत्र होगा। वह अपने भाई प्रतापमल्लके पुत्र अर्जुनदेवका राज्याभिषेक कर स्वर्गवासी हो गया। ऐसा, सं० १३४३ (ई०स० १२८७)की त्रिपुरान्त प्रशस्तिमें कहा गया है—

श्रीविश्वमल्लः स्वपदेऽभिषिच्य प्रतापमल्लात्मजमर्जुनं सः।
साकं सुधापाकमभुंक्त नाकनितम्बिनीनामधरामृतैन ॥
(श्री गिरिजाशंकर आचार्य, 'गुजरातना ऐतिहासिक लेखो' भाग ३ लेखांक २२२)

अर्जुनदेव और उसके पुत्र युवराज रामदेवने राज्य-शासनका भार एक साथ ही अपने अपने हाथोंमें ले लिया था। किन्तु रामदेवका अपने पिताका जीवन-कालमें ही देहान्त हो गया प्रतीत होता है। क्योंकि, अर्जुनदेवके पश्चात् रामदेव नहीं अपितु इसका भाई सारंगदेव पाटणकी राज्यगद्दीपर आता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ईडरके पास भीलोड़ा ताल्लुकामें भुवनेश्वरके सुप्रसिद्ध मंदिरके सम्मुख एक मुरलीधर मंदिर है। इसकी दीवारमें किसी प्राचीन सूर्यमंदिरमेंका सारंगदेवका बाघेलाके समयका सं० १३५४ (ई०स०१२९८) का शिलालेख लगा हुआ है। श्री नीलकण्ठ जीवतरामने 'बुद्धिप्रकाश,' १९१०में इसे प्रकाशित कराया है। तत्पश्चात् इसका शुद्धतर पठन श्री तनसुखराम त्रिपाठीने 'बुद्धिप्रकाश,' मार्च अप्रैल १९१०में विवेचन सहित प्रकाशित किया है, (श्री गिरिजाशंकर आचार्य द्वारा सम्पादित और फार्बस गुजराती सभा द्वारा प्रकाशित किया गया 'गुजरात ना ऐतिहासिक लेखों'में यह महत्त्वपूर्ण शिलालेख संग्रहीत नहीं है।) इसमें दी गई वाघेलाओंकी वंशावलिपरसे उस कालमें द्वैराज पद्धति होनेका ज्ञान स्पष्ट हो जाता है। उपर्युक्त रामदेव कि जिसका कोई उत्कीर्ण लेख अथवा पुष्पिका अभी तक उपलब्ध नहीं हुई है इसका भी राज्यकर्ताके रूपमें उल्लेख है। (तस्याङ्गजः संप्रति राजतेऽसौ श्रीरामनामा नृपचक्रवर्ती। श्लोक १२) चिन्तामणि पार्श्वनाथके मंदिरकी प्रशस्तिमेंके रामदेवके संबंधी उल्लेखके साथ इसकी तुलना करनेपर इसके निर्णायक अर्थके सम्बन्धमें किसी प्रकारकी शंका नहीं रहती।

वाघेलाओंके समकालीन राजवंश, सुवर्णगिरी—जालौरके सोनगिरी चौहाणोंमें भी यह पद्धति थी। 'कान्हड़दे प्रबन्ध'के नायक कान्हड़देके सम्बन्धमें तो इस विषयमें स्पष्ट समकालीन प्रमाण है। जालौरके सं० १३५३ (ई०स० १२९७)के एक लेखमें कान्हड़देवको अपने पिता सामन्त सिंहके साथ राज्य करते हुए बताया गया है—

ओं। (सं०)वत् १३५३ (वर्षे) वे (शा)ख वदि ५ (सोमे) श्री सुवर्णगिरी अद्येह महाराजकुल श्रीसाम् (मं)त सिंहकल्याणं (ण) विजयराज्ये तत्पादपद्मोपजीविनि (रा)जश्रीकान्हड़देवराज्यधु रा(मु)द्वहमाने इहैव वास्तव वास्तव्य—

(प्राचीन जैन लेखसंग्रह, भाग २ लेखांक ३५३)

तदनुसार जालौरके पास चोटण गाँवमेंसे प्राप्त और जालौरमें सुरक्षित सं० १३५५ (ई० सं० १२९९) के एक लेख में (बुद्धिप्रकाश, ऐप्रिल १९०, पृ० १११) इसी प्रकार से सं० १३५६ (ई० सं० १३००) के एक अप्रसिद्ध शिलालेखमें (दशरथ शर्मा, 'अर्ली चौहाण डाइनेस्टिज,' पृ० १५९) में भी सामन्तसिंह और कान्हड़देव का राज्यकर्त्ताके रूपमें साथ-साथ ही उल्लेख है।

इस प्रकारके शासनप्रबन्धमें ऐसा भी होता था कि पिताकी अपेक्षा पुत्र अधिक प्रतापी हो तो साहित्य और अनुश्रुतिमें पुत्रको ही अधिक स्मरण किया जाता है। सामन्तसिंहके लेख सं० १३३९ से १३६२ (अर्थात् ई० सं० १२८३ से १३०६) तकके उपलब्ध होते हैं (शर्मा उपर्युक्त पृ० १५९) सं० १३५३ की अवधिमें कान्हड़देव अपने पिता सामन्तसिंहके साथ राज्य-प्रबन्धमें सम्मिलित हुआ हो, ऐसा उत्कीर्ण लेखोंपरसे विदित होता है (गुजरातके सारंगदेव वाघेलाका देहावसान सं० १३५३ में हुआ और इसी वर्ष कर्णदेव पाटणकी गद्दीपर आया यह ऐतिहासिक प्रमाणोंसे निश्चित है। इतना होते हुए इसके बाद डेढ सौसे भी अधिक वर्षके पश्चात् 'कान्हदेप्रबन्ध'के रचयिता पद्मनाभने उस समय गुजरातमें सारंगदेव और कर्णदेवका साथ-साथ राज्य होनेका वर्णन किया है; जो द्वैराज्य पद्धतिकी बलवान परम्पराका द्योतक है) गुजरातका हिन्दु राज्य अलाउद्दीन खिलजीसे पराजित हुआ यह एक मतसे सं० १३५६ (ई० सं० १३००) में और दूसरे मतसे सं० १३६० (ई० सं० १३०४) में किन्तु १३६० से अधिक बादमें तो नहीं है।

पाटण और सोमनाथपर अलाउद्दीनका आक्रमण हुआ और वहाँसे लौटते समय जालौरके चौहाणोंने मुस्लिम सेनाको पराजित किया वह यही समय था। उस समय जालौरकी राज्यगद्दीपर सामन्तसिंह था इस संबंधमें समकालीन उत्कीर्ण लेखों द्वारा असंदिग्ध प्रमाण प्राप्त होते हैं। किन्तु इसके वंशज अखेराजका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

राजकवि पद्मनाभ 'कान्हड़दे प्रबन्ध'के प्रारम्भमें सामन्तसिंहका केवल नामोल्लेख करके कान्हड़देवका चरित्र ही वर्णन कर देता है। कान्हड़देव, पृथ्वीराज एवं हम्मीरकी श्रेणीका वीर योद्धा, नेतृत्व शक्ति सम्पन्न था और उसकी स्मृति साहित्यमें उसके पितासे भी विशेष रूपसे सुरक्षित है। सामन्तसिंहका देहान्त सं० १३६२ या १३६३ (ई० सं० १३०६ या १३०७) में हुआ था। अर्थात् पाटन और सोमनाथके पतनके पश्चात् शीघ्र ही मुस्लिम सैन्य और जालौरके चौहानोंके प्रथम युद्धमें वह विद्यमान था। किन्तु, इस सम्बन्धमें पद्मनाभ मौन ही है। काव्यके प्रारम्भमें कान्हड़देवका उल्लेख सामन्तसिंहके पुत्रके रूपमें इतना ही किया है—

जालहुरउ जगि जाणीइ, सामन्तसी सुत जेउ
तास तणा गुण वर्णवूं, कीरति कान्हडदेउ

'कान्हड़देप्रबन्ध'के कथनानुसार जालौर का पतन सं० १३६८ (खंड १ कड़ी ५) (ई० सं० १३१२) में हुआ था और इस अंतिम युद्धमें कान्हड़देव वीरगतिको प्राप्त हो गया।

राजस्थानके चौहान राजा—जालौर, नाडौल, सपादलक्ष और चन्द्रावतीके शासक गुजरातके माण्डलिक थे। इसमें जालौर और चन्द्रावतीके साथ पाटणका सम्बन्ध सर्वोत्तम था। सं० १३४८ में फिरोज खिलजीने जालौरके राज्यपर आक्रमण किया और दक्षिणकी ओर ठेठ सांचोर तक वह आ पहुँचा। तब सारंगदेव वाघेलाने जालौरके चौहाणोंकी सहायताकर मुस्लिम सेनाको वापस खदेड़ दिया था। ('विविधतीर्थ कल्प', पृ० ३०) इसके कुछ वर्षोंके पश्चात् अलाउद्दीनका आक्रमण हुआ था। पारस्परिक सहायताके इस सम्बन्धके कारण भी कान्हड़देवने अलाउद्दीनकी सेनाको मार्ग देनेसे इन्कार किया होगा।

गुजरातके राजाने माधव ब्राह्मणका जब तिरस्कार किया तभी उस घटनामेंसे विग्रह हुआ—इस आशयका उल्लेख 'कान्हड़देप्रबन्ध'के प्रथम खण्डकी तेरहवीं कड़ीके उत्तरार्द्धमें हम पहले देख चुके हैं। इसके बाद २५-२६ वीं कड़ीमें अलाउद्दीनके दरबारमें कर्ण वाघेलाके व्यवहारके सम्बन्धमें फरियाद करते समय माधव महेताके मुखके निम्न शब्द पद्मनाभने रखे हैं—

पहिलु राइ हूँ अवगण्यउ, माहरउ बंधव कैसव हण्यउ
तेह धरणी धरि राखि राइ, एवडु रोस न सहिणउजाइ।

कर्णने मंत्रीकी पत्नीका अपहरणकर लेने की अनुश्रुति सही रूपये प्राचीन होना चाहिये किन्तु इसका विधिवत् वर्णन करनेवाले लेखकोंमें पद्मनाभ अग्रगण्य है। इस अनुश्रुतिकी विश्वनीयताके सम्बन्धमें इतिहास शोधकोंमें मतभेद है। हम, यहाँ इस चर्चामें नहीं उतरते हैं। किन्तु इतना तो निश्चित है कि कर्ण और माधवके मध्य वैमनस्य होनेका कारण मात्र कर्णके राज्यारंभके समान ही पुराना था और बादमें पीछेसे इस सम्बन्धमें अन्य कारण सम्मिलित हो गये होंगे। संस्कृतके 'नैषधीय चरित' महाकाव्य परकी चण्डू पंडित द्वारा की गई सुप्रसिद्ध टीका सं० १३५३ में धोलकामें की गई थी। सारंगदेवका देहान्त भी इसी वर्षमें हुआ था। सारंगदेवके शासनकालका यह अन्तिम वर्ष और कर्णके शासनकालका प्रथम वर्ष था। चण्डू पण्डितने प्रस्तुत काव्यके आठवें सर्गके ५९ में श्लोककी टीकामें लिखा है—"वर्तमान महामात्य माधवदेवने उदयराजको गद्दीपर बिठानेका प्रयत्न करते समय महाराज श्रीकर्णदेवकी भूमिमें सर्वत्र लूट-खसोट चलनेसे द्वैराज्यके कारणसे लोगोंमें विरक्ति उत्पन्न हो गई (यथा—इदानीं महामात्य श्री माधवदेवेन श्री उदयराजे राजनि कर्तुमारब्धे सति महाराजश्रीकर्णदेवस्य भूमौ सर्वत्र सर्वजनानां वित्तेऽपह्रियमाणे द्वैराज्यात् लोके विरक्तिरजनि।) इसका यह अभिप्राय हुआ कि माधव मंत्री ऐसा नहीं चाहते थे कि कर्ण राज-गद्दीपर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बैठे। सम्भव है कि कर्णके दुर्गुण इसमें कारणभूत हों। माधवने किस उदयराजको राज्य सौंपनेका प्रयत्न किया था वह वाघेला वंशका ही कोई व्यक्ति होगा। किन्तु इस सम्बन्धमें उपलब्ध साधनोंमेंसे विशेष कुछ जानकारी नहीं प्राप्त हो सकी। राज्य-शासन परिवर्तनके प्रयत्न निष्फल हो जानेपर माधवने कर्णके साथ व्यावहारिक समाधान कर लिया होगा और प्रतिष्ठित एवं कार्य कुशल पुराने मंत्रीको एकाएक पदभ्रष्ट कर देनेका साहस कर लेना भी कर्णको उचित प्रतीत नहीं हुआ हो। किंतु इसके बाद इन दोनोंके परस्पर सम्बन्ध ठीक न रहे थे अन्तमें इसीका अत्यन्त गम्भीर परिणाम गुजरात राज्यको भोगना पड़ा।

'कान्हड़देप्रबन्ध'के रचनाकालसे लगभग डेढ़ सौ शताब्दी पूर्व घटित घटनाओंकी यह बात हुई किन्तु इस समयकी सांस्कृतिक परिस्थितिके सम्बन्धमें भी 'कान्हड़देप्रबन्ध'मेंसे इतनी वैविध्यपूर्ण सामग्री उपलब्ध होती है और अन्य उपलब्ध प्रमाणोंके साथ इसका विभिन्न प्रकारसे संयोजन इतना महत्त्वपूर्ण बन जाय यह ऐसा है कि यह विषय अन्तमें एक महानिबन्धकी क्षमता रखता है। इस भाषणकी मर्यादामें मैं स्थालीपुलाक न्यायानुसार कतिपय प्रमाणोंकी ओर ही आपका ध्यान आकर्षित करूँगा।

'कान्हड़देप्रबन्ध' की रचना पद्यमें होने पर भी इसमें प्रसंगोपात भडाउलि-भटाउलि शीर्षकके अन्तर्गत गद्य वर्णक आता है। 'वर्णक' अर्थात् किसी भी विषय का परम्परा से लगभग निश्चित किया गया एक मार्ग, अक्षरोंके रूपके मात्रा और लयके बंधनोंसे मुक्त होते हुए भी इसमें ली गई समस्त छूटका लाभ लेते हुए। प्रास मुक्त 'गद्य-बोली'में बहुत कुछ वर्णकोंका सृजन किया हुआ है जो अब प्राचीन गुजराती साहित्यके शोधकोंको सुविदित है। प्राचीन भारतीय साहित्य प्रणालीमें—संस्कृत, पालि इसी प्रकारसे प्राकृत-में वर्णकोंकी परम्पराका मूल खोजा जा सके, ऐसा है। पालिमें ऐसे वर्णन 'पैथ्याल' नामसे पहचाने जाते हैं और जैन आगम साहित्यमें वे 'वण्णओ' कहे जाते हैं। प्राचीन गुजराती वर्णकोंके समुच्चय प्रकाशित हुए हों तथा वस्त्रालंकार, भोजनादि, शस्त्रास्त्रों एवं विविध आनुषंगिक विषयोंके सम्बन्धमें विधिवत् वर्णक सुलभ होकर 'कान्हड़देप्रबन्ध'में की भटाउलियों के अध्ययन हेतु अब उचित साहित्यिक एवं सांस्कृतिक संदर्भमें अवलोकन किया जा सके, ऐसा है। वीररस प्रधान वर्णकको भटाउलि कहा जाता होगा यह भी समझा जाय, ऐसा है।

'कान्हड़देप्रबन्ध'के प्रथम खण्डके लगभग मध्यमें (श्रीव्यासकी आवृत्ति पृ० ४०-४८) आई हुई भटाउलिमें कान्हड़देवके घोड़े और उसके शृंगार सैन्य, सैनिक एवं दण्डायुधका वर्णन है। तृतीय खण्ड की भटाउलि (पृ० १५६-५९)में जालौरके किलेका और कान्हड़देवकी सभाका उज्ज्वल वर्णन है। पद्मनाभ द्वारा इसमें अखेराजकी राज-सभाका उल्लेख किया जाना वस्तुतः सम्भवित हो। (गंगाधर कृत गंगादासप्रतापविलास नाटकमें चांपानेरका वर्णन करते हुए चित्रपटका यहाँ स्मरण हो आता है।) चतुर्थ खण्ड (कड़ी ९-५८)में जालौर नगर और इसमेंकी विविध प्रकृतियोंका जो सांगोपांग वर्णन है वह पद्मनाभके समकालीन जालौरका होगा किन्तु, उस समयके गुजरात-राजस्थानके अनेक नगरोंको समझने के काम आवे, ऐसा है। इसमें :

कागल कापड़ नइ हथियार, साथि सुदागर तेजी सार

(खण्ड ४ कड़ी १६)

इस पंक्तिमें शस्त्रोंके व्यापारके साथ-साथ तेजी-घोड़े बेचनेवाले सम्भवतः विदेशी सौदागरों का भी स्पष्ट निर्देश है।

'कान्हड़देप्रबन्ध'में विभिन्न जातिके घोड़ों की विस्तृत सूची है। अन्य वर्णकोंमें एवं संस्कृत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

साहित्यमें और संस्कृत कोषोंमें भी इसी प्रकारके घोड़ोंके नाम मिलते हैं। इन नामोंमें कुछ तो उनके रंगपरसे और कुछेक शरीराकृति परसे हैं। कतिपय नाम देशवाचक है (जैसे कि, सिंधूया, पहिठाणा, उत्तर देशके ऊंदिरा, कनूज देशके कुलथा, मध्य देशके महूयड़ा, देवगिरा, बाहड़देशके बोरिया-पृ०४२-४३) कुछेक तो स्पष्टरूपसे परदेशी है (जैसे कि, स्पाणीपंथा, नई खुरसाणी, एक तुरकी तुरंग, खण्ड १ कड़ी १८५ इसके उपरान्त देखें-तोरका-खेत्र, खुरासाणी, पृ० ५२-५३) आज तो इनमेंके कुछेक नामोंका अर्थ सर्वथा समझमें ही नहीं आता है। यह सम्भव है कि इनमेंसे अमुक विदेशी हों। संस्कृत कोषोंमें भी इसी प्रकारके नाम आये हैं। उच्च श्रेणीके युद्धोपयोगी घोड़ोंका विदेशोंसे भारतमें आयात होता रहता था। संस्कृत-प्राकृत साहित्यमें ईरानी किंवा अरबी घोड़ोंके सौदागरोंके सम्बन्धमें उपलब्ध अनेकों वार्तायें इसका सूचक है। जिस प्रकारसे गौका घण, महिषका खांडु और भेड़-बकरीका बाघ उसी प्रकारसे तेज उपयोगी घोड़ोंके समुदायके सम्बन्धमें प्राचीन गुजरातीमें 'लास' शब्दका व्यवहार हुआ है। सुल्तान अलाउद्दीनके सम्मुख माधव मेहता द्वारा 'घोड़ों-की लास' भेंट कराते हुए 'कान्हड़देप्रबन्ध'कारने वर्णन किया है—

धरी भेटी **घोड़ानी लास,** मीर ऊँबरे करी अरदास
बडउ मुकर्दम माधव नाम, पातिसाहनइ करइ सिलाम (खण्ड १, कड़ी २०)

ठेठ विक्रमके तेरहवें शतकके 'भरत-बाहुबलि रास'में 'हय लास' शब्दका प्रयोग आया है और सत्रहवें शतक तक यह शब्द यदा-कदा दिखाई देता रहा है। सं० लक्ष्मीपरसे इसकी व्युत्पत्ति उचित प्रतीत नहीं होती है। घोड़ोंके समूहका अर्थ व्यक्त करते समय किसी विदेशी शब्दका यह रूपान्तर होना सम्भव है। अर्वाचीन गुजराती भाषाके उत्तम अश्ववाचक कुछेक शब्द—'केकाण', 'तोरवार', 'ताजी-तेजी', विदेशी हैं।

युद्ध सम्बन्धी काव्य होनेके कारण यह स्वाभाविक है कि 'कान्हड़देप्रबन्ध'में अस्त्र-शस्त्रोंका उल्लेख हो। खड्ग एवं खांडु एक ही अर्थवाचक अनुक्रमसे तत्सम और तद्भव शब्द हैं और उसके अनेक प्रकारके नाम वर्णकोंमें उपलब्ध होते हैं ('वर्णक-समुच्चय', भाग २ सूचीयें पृ० १८७)। जो सीधे फलकवाला और चौड़ाई लिये हुए हो उसे खड्ग, टेढ़े फलकवाली तलवार, सीधी तलवारके समान पतले फलक का जो मुड़ जाय ऐसे खड्गको पटा कहते हैं। इस खड्ग द्वारा खेले जानेवाले खेलको पटाबाजी कहते हैं। करण वाघेला बिना म्यानका पटा अपने हाथमें रखता था।' कान्हड़देप्रबन्धमें इस सम्बन्धमें ऐसा वर्णन आया है—

एहवउ अंग तणउ अनुराग, नितनित मच्छ करइ वछनाग
विण पडियार **पटउ** कर वहइ, न को अंगरखजमलउ रहइ
(खण्ड १, कड़ी २४)

फिर आगे चलकर खांडा और तलवारसे पृथक् पटाका उल्लेख है वहाँ भी यह भिन्नता स्पष्ट हो जाती है। कान्हड़देवकी सहायतामें छत्तीसों राजवंशी एकत्र होते हैं और वे अपने-अपने शस्त्रोंको धारण करते हैं—

अंगा टोप रंगाउलि खांडा, खेडां **पटा** कटारी
सींगणि जोड भली तड्यारी, लीजइ सार विसारी (खण्ड १, कड़ी १८१)
खांडा **पटा** तणा गजवेलि, अलवि आगिला हींडइ गेलि (खण्ड ४, कड़ी ४७)

'कान्हड़देप्रबन्ध'में कुछेक अल्पज्ञात शस्त्रोंमें 'गुर्जर'का उल्लेख है और 'वर्णक-समुच्चय' (भाग २ सूचीयें पृ० १८८) में भी इसका 'गुरुज' नामसे नामान्तर प्राप्त होता है। कान्हड़देवका भतीजा सांतलसिंह रात्रिके समय सुल्तानकी छावनीमें जाकर निद्रामग्न सुल्तानका गुरुज अपने साहसिक निशानी स्वरूप ले आता है—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वलीं विमासी पासइ हुंतउ, **गुर्ज** लीउं अहिनाण
विण संकेत कहीइ केतलइ नही मानइ सुरताण (खण्ड २, कड़ी १३७)
अवधि एतलइ पहुतउ काल, ग्यउ आकाशि धूप विकराल
सातल भणइ **गुरज** मोकलउ, पातिसाह कहसि हुं भलउ,
(खण्ड २, कड़ी १५९)

गुरज, लोहेके हत्थेवाला और गदाके समान छोटा, सिरेपर लोहा लगा हुआ और धारियें डाला हुआ एक शस्त्र होता है। अधिकतर फकीरोंके पास छोटी गुरज होती है। जिसे वे अपने हाथमें रखते हैं।

संनाह—बख्तरके विभिन्न प्रकार—जरहजीण, जीवणसाल, जीवरखी, अंगरखी, करांगी, वज्रांगी, लोहबद्धलुडि—'कान्हड़देप्रबन्ध'की भटाउलि (पृ० ४७)में वर्णित है। इनके अतिरिक्त अंगा और रंगाउलि इन भेदोंका भी उल्लेख है (खण्ड १ कड़ी १८९, पृ० ८१ की टिप्पणीमें अंकित प्रक्षेप पंक्ति ७) इन सभी भेदोंका प्रत्यक्ष ज्ञान करने हेतु जिज्ञासुओं और विद्यार्थियोंको किसी सिलहखानेको देखना चाहिए।

तोप और दारूगोलोंका कुछ उल्लेख भी 'कान्हड़देप्रबन्ध'में है। प्रो० पी० के० गोडेके मतानुसार (ए वोल्युम आफ इण्डियन एण्ड इरानियन स्टडीज पृ० १२१-२२), भारतमें तोपके व्यवहारका सर्वप्रथम उल्लेख मूलतः एक चीनीका है और वह ई० पू० १४०६ जितना प्राचीन है। दारू गोला और तोप-बन्दूकके सम्बन्धमें भारतीय मुस्लिम उल्लेखोंमें अनुक्रमसे ई० सं० १४७२ और १४८२ है। नालिका किंबा तोपका और दारूगोलाका प्राचीनसे प्राचीन उल्लेख उपलब्ध संस्कृत साहित्य—'आकाश भैरवकल्प'में का—ईसाकी सोलहवीं शताब्दीके उत्तरार्द्धका है। इसकी अपेक्षा 'कान्हड़देप्रबन्ध'का उल्लेख लगभग एक शताब्दी जितना पुराना है। अहमदाबादमें देवशा पांडेके ग्रन्थ भण्डारकी 'कल्पसूत्र'की एक सचित्र हस्तलिखित पत्रमें बन्दूकधारी सैनिकका चित्र है। (कार्ल खंडालावाला और मोतीचन्द्र, न्यू डोक्युमेण्ट्स आफ इण्डियन पेइण्टिंग, बम्बई १९६९ चित्र सं० ६२) इस हस्तलिखित पत्रके अन्तिम पत्र गुम हो जानेके कारण इसका लेखन-वर्ष ज्ञात न हो सके ऐसा नहीं किन्तु लिपि एवं चित्रकी शैली परसे यह ई० सं० १४७४ के आसपास-का होनेका अनुमान कतिपय जानकारोंने लगाया है। इस 'कान्हड़देप्रबन्ध'की रचना ई० सं० १४५६ की है इस दृष्टिसे यह वास्तविक प्रतीत होता है। दूसरा, भारतीय चित्रकलाकी खोज करनेवाले कतिपय पाश्चात्यों-ने 'कल्पसूत्र'की प्रस्तुत हस्तलिखित प्रतिमेंके बन्दूकके आलखको ठेठ सोलहवीं शताब्दीमें रखनेका प्रयास किया है यह भी 'कान्हड़देप्रबन्ध'मेंके तोप दारूगोले आदिका ब्यौरेवार वर्णनको अनुलक्षित करनेपर उचित प्रतीत नहीं होता। अब 'कान्हड़देप्रबन्ध'में प्रस्तुत अवतरण की ओर दृष्टिपात करना चाहिए।

जालौरके पास समियाणाका किला, जिसका रक्षा कान्हड़देवका भतीजा सांतलसिंह कर रहा था उसके घेरे जानेका वर्णन देखें—

तुरक चड़ी गढ साहमा आवइ, उठवणी असवार
साम्हा सींगिणि तीर विछूटइ, **निरता** वहइ **नलीयार**,
उपरि धिकूं ढील ज धाइ, झाडवीड सहू भांजइ
हाड गूड मुख करइ **काचरां** पडतउ पाहण वाजइ,
आगिवर्ण उडता आवइ, **नालइ नांख्या गोला**
भूका करइ भीति भांजीनइ, तणखा काढइ डोला,
यंत्र मगरबी गोला नांखइ, दू सांधी सूत्रहार
जिहां पडइ तिहां तरुवर भांजइ, पडतउ करइ संहार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पडइ त्रास भटकियां बिछूटइ, नइ धूधूइ निफात
वीज तणि परि झलकती दीसइ, जेहवी ऊलकापात,

(खण्ड २, कड़ी १२५-२९)

'तुर्क घोड़े सवार होकर आक्रमण करते हुए गढ(किले)की ओर आते हैं। सामने से धनुषमेंसे तीर छूट रहे है और तोपचीलोग (नलीयार, सं० नलिकाकार) तोप ('निरता')[1] खींचते हुए जा रहे हैं। (किलेमेंके लोग) ऊपरसे बड़े-बड़े पत्थर फेंक रहे हैं और इन गिरते हुए पत्थरोंसे चोट पहुंच रही है। तोपमें ('नालि') डाले हुए अग्निवर्णके गोले उड़ते आ रहे हैं वे (किलेकी) दीवारको तोड़कर चूर-चूर कर देते हैं और उनमेंसे मोटी-मोटी ज्वालायें निकलती हैं। सूत्रधार लोग, निशाना साधकर मगरबी यन्त्रमेंसे—पत्थर फेंकनेवाले यन्त्रोंमें से (पत्थरके) गोले[2] फेंक रहे हैं। ये जहाँ भी गिरते हैं वहाँके पेड़ पौधोंको नष्ट कर देते हैं और संहार करते हैं। बड़े फटाके ('भटकीयाँ') छूटते हैं और 'नफात' (इस नामका बारूद[3] खाना) प्रज्वलित हो जाता है। यह विद्युतवत् चमकता हुआ दिखाई देता है मानो उल्कापात ही हो रहा है।

घोर मध्य रात्रिमें किलेपरसे कटक—छावणीमें हवाइ आते रहनेका खण्ड २ कड़ी ११३में है।

'कान्हड़देप्रबन्ध'के द्वितीय खण्डकी भटाउलि (पृ०१५८-५९)में राजाधिकारियोंकी एक छोटी-सी सूची आती है—

आमात्य प्रधान सामन्त मांडलिक, मुकुट बर्द्धन श्री गरणा वइगरणा धर्मादिकरणा
मसाहणी टावरी बारहीया पुरुष वइडा छइ,

पाठान्तरमें 'पटवारी, कोठारी' और 'परघु' ये कर्मचारीगण हैं। इनके अतिरिक्त 'खेलहुत'—शेलत (प्रथम खण्डकी भटाउलि, पृ० ५१, खण्ड ४ कड़ी ४०) और नगर—तलार, पौलिया-द्वाररक्षक, सूआर—

---

१. प्राचीन गुजराती साहित्यमें अन्यत्र कहीं भी इस 'निरता' पाठ (पाठान्तर 'नरता') शब्द मेरे देखनेमें नहीं आया किन्तु यहाँ संदर्भ देखते हुए उसका अर्थ 'तोप' ही प्रतीत होता है। १२७ वीं कड़ीमें 'नालि' का अर्थ 'तोप' है इसमें तो शंका नहीं। 'आकाश भैरवाकल्प'में तथा रुद्र कविके 'राष्ट्रीयवंश महाकाव्य' (ई०सं० १५०६)में तोपके लिये 'नालिकास्त्र' और 'नालिका' शब्दोंका प्रयोग हुआ है। श्री अगरचन्द नाहटाको मिले हुए लगभग सत्रहवीं शताब्दीके 'कुतूहलम्' नामक एक राजस्थानी वर्णक-संग्रहमें वर्षाके वर्णनमें 'मेह गाजइ, आणे नालगोला वाजइ' (राजस्थान-भारती पु० १ पृ० ४३) इस प्रकारसे हैं वहाँ भी 'नाल' शब्दका अर्थ तोप है।

२. जालौरके किलेकी शस्त्रसज्जताके वर्णनपरसे विदित होता है कि ऐसे गोलोंका बहुत बड़ा संग्रह किलेपर रहता था--

गोला यंत्र मगरवी तणा, आगइ गढ उवरि छइ घणा
ऊपरि अन्न तणा कोठार, व्यापारीया न जाणूं पार (खण्ड ४, कड़ी ३५)

राजस्थानके कतिपय किलोंपर अद्यापि पत्थरोंके ऐसे गोलोंका संग्रहीत ढेर दिखाई देता है।

३. 'निफात' शब्द सं० निपातका तद्भव नही है अपितु यह एक प्रकारका बारूदघर है। यह मधुसूदन व्यास रचित 'हंसवती विक्रम चरित्र विवाह' (ई०स० १५६०)में बरातके जुलूसके वर्णनपरसे सिद्ध होता है। हवाइ छूटइ अनइ नफात, 'जिस पूरण गाजइ वरसात' (कड़ी ६५३) इसमें, इस प्रकारका निर्देश है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पाकशालाका ऊपरि अधिकारी अवधानियाँ (१) दहेरासरी—देवस्थानोंकी देखरेख रखनेवाला एवं भण्डारी (खण्ड ४ कड़ी ३९-४२) का 'पान कपूर देनेवाला थईआत' (खण्ड ४, कड़ी ५१) का तथा 'महिता कुंडलिया टावरी' (खण्ड ४, २६२) और सेजपाल (खण्ड ४, कड़ी १८१-१९३) का भी उल्लेख है। खण्ड ४, कड़ी १२-२०में जालौर-वर्णनमें नगरके व्यवसाय और व्यवसायियोंका निर्देश ध्यान देने योग्य है इसमें वणिक ज्ञातिके सम्बन्धमें कहा है—

वीसा दसा विगति विस्तरी, एक श्रावक एक माहेसरी

जो, गुजरात एवं राजस्थानके लिए वर्तमानमें भी सत्य सिद्ध होता है। वर्णकोंमें राजलोग और पौरलोगोंकी अपेक्षा अधिक विस्तृत नामावलि उपलब्ध होती है। (वर्णक समुच्चय, भाग २ सूचीयें पृ० १७६-१८५) जो तुलनात्मक रूपसे इसके साथ करते हुए अध्ययन करने योग्य है।

'कान्हड़देप्रबन्ध' के तृतीय खण्ड (कड़ी ३७-६८) और चतुर्थ खण्ड (कड़ी ४३-४५) में कान्हड़देवकी सेवामें सज्जित विभिन्न वंशोंके राजपूतोंकी वार्ता है उसमें 'हूण' वंश भी है—

बलवन्ता वारड नई हूण, तेह तणइ मुखि मांडइ कूण (खण्ड ३ कड़ी ३८)
एक राउत चाउडा हूण, अति फुटरा उतारा लूण, (खण्ड ४ कड़ी ४४)

'कान्हड़देप्रबन्ध' के नायकसे पूर्व हुए शाकंभरीके चौहाण बीसलदेव अथवा विग्रहराजने अजमेरमें सं० १२१०में बनाई हुई पाठशालामेंके (जिसको बादमें मस्जिदके रूपमें बदल दिया गया था और जो वर्तमानमें ढाई दिनका झोंपड़ा, के नामसे पहचानी जाती है) उत्कीर्ण दो संस्कृत नाटक—विग्रहराज स्वरचित 'हरकेलि' और उसके सभापंडित सोमदेव रचित 'ललितविग्रहराज' शिलाखण्ड पर लिखकर बादमें खोदनेवाले पंडित भास्कर 'हूण' राजवंशमें जन्मे हुए एवं भोजराजके प्रतिपात्र विद्वान् गोविन्दके पुत्र पंडित महिपालका पुत्र था, ऐसा इन नाटकोंके अन्तमें वर्णित है। ('इण्डियन एण्टीक्वेरी' पु० २० पृ० २१०-१२) माणिक्यसुन्दर सूरि कृत पृथ्वीचन्दचरित्र, (प्राचीन गुर्जर काव्यसंग्रह पृ० १२५) में तथा 'वर्णक समुच्चय' भाग १ (पृ० ३३ पंक्ति १२) में भी राजवंश वर्णनमें 'हूण' है। गुजरातके रेबारियोंमें 'हूण' अटक है तथा श्री सुन्दरम्की 'गट्टी' नवलिकामें बारैया ज्ञातिका युवक जब अपनी ससुराल आता है तो उसका स्वागत उसकी सालियें 'आशा होण 'हूण' आये ! आशा होण आये !! कहते हुए करती हैं। यहाँ प्रजामें हूण जाति किस प्रकारसे समाविष्ट हो गई होगी, इसका कुछेक अनुमान इन प्रयोगोंपरसे हो आता है।

'कान्हदेप्रबन्ध' में से स्थापत्य एवं नगर-रचना सम्बन्धी उल्लेख पृथक् करके श्री नरसिंहराव ने सूची के रूपमें संक्षिप्त विवरण दिया है (पुरोवचन, पृ० १३-१४) इसी परम्पराके अनुरूप लगभग समकालीन वर्णन और इसका विस्तारपूर्वक उल्लेख वर्णकोंमें भी देखनेको मिलता है। ('वर्णक समुच्चय', भाग २ सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० ८८-९४, सूचीयें पृ० १७१-७५) इसके साथ-साथ मध्यकालीन गुजरात राजस्थानमें रचे गये मारू-गुर्जर एवं संस्कृत साहित्यमेंके विभिन्न वर्णन और विपुल उल्लेखोंके साथ तुलनासे तथा शक्य हो सके वहाँ तत्कालीन स्थापत्य, शिल्प एवं चित्रोंके साथ संयोजन करनेसे इस विषयमें बहुत नवीन जानकारी प्राप्त होती है अथवा ज्ञात वस्तुओंमें महत्त्वपूर्ण वृद्धि हो सकती है, ऐसा है।

पद्मनाभने 'कान्हड़देप्रबन्ध'में जालौरके किलेपरके तथा इसकी तलहटीके नगरमेंके प्रसंगवश वर्णनको लक्षमें रखकर जिन विविध स्थलोंका निर्देशन किया है वे समस्त आज भी देखे जा सकते हैं, पहचाने जा सकते हैं अथवा उनका स्थान निर्णय हो सकता है। प्राचीन साहित्य रचनामें निर्दिष्ट भूगोलका प्रत्यक्ष परिचय इस विशिष्ट रीतिसे एक आकर्षक विषय है। इस काव्यमें वर्णित स्थानोंका प्रत्यक्ष-दर्शन कर लेनेके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पश्चात् इसमेंके वर्णन किंबा निर्देशनोंके यथाशक्य संयोजनका प्रयत्न मैंने एक लेखमें ('जालौर और श्रीमालकी विद्यायात्रा,' 'बुद्धि प्रकाश' अप्रैल १९६७) किया है अतः यहाँ विस्तार नहीं करूंगा।

इस प्रकारसे भाषा एवं साहित्य दोनों दृष्टिकोणसे मारु-गुर्जर साहित्यमें 'कान्हड़देप्रबन्ध' अत्यन्त महत्त्वका है। मध्यकालीन भारतीय इतिहासके लिये निर्मित साधन-ग्रन्थोंमें इसका अति विशिष्ट स्थान है। *मुस्लिम राज्यकालके अमुस्लिम मूल साधनोंकी—कतिपय विद्वानोंके शब्दोंमें कहा जाय तो—नोन-पर्सियन* सोर्सिजकी—शोध और अध्ययनका प्रयत्न विशेष रूपसे हो रहा है तब तो 'कान्हड़देप्रबन्ध'के प्रति सविशेष ध्यानाकर्षण करना होगा, ऐसा है। चौहान वंशके विशिष्ट पुरुषोंपर रचे गये संस्कृत महाकाव्य, जयनक कृत 'पृथ्वी राजविजय', और नयचन्द्रसूरिकृत 'हम्मीरमहाकाव्य'के समकक्ष ही 'कान्हड़देप्रबन्ध'का स्थान है। ('पृथ्वीराज रासो', एक प्रकारसे अपभ्रंश महाभारत होनेपर भी इसका विवेचन एक पृथक् विचार करने योग्य है।) प्रशस्ति अत्युक्तियोंके होनेपर भी सामान्यतः ये कवि स्थितिकी वास्तविकताका निरूपण करनेसे नहीं चूके हैं। इतना होते हुए भी उपयुक्त संस्कृत महाकाव्योंके समान साहित्यशास्त्रके दृढ़ बंधनोंसे अलिप्त ऐसी पद्मनाभकी काव्य रचनाके पठन और परिशीलनसे एक प्रकारकी मुक्तताका अनुभव होता है।

मैं, इस परिशीलनका अवसर देने हेतु इस संशोधन संस्थाके नियामक महोदयका पुनः उपकार मानता हूँ।

(बुद्धिप्रकाश फरवरी सन् १९७०के पृ० ५९ से ६९ तकसे)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org